आमने-सामने

अपने हक़ों के लिए संघर्ष जारी है

दयामणि बारला

लोग मुझसे पूछते हैं- तुम सामाजिक सेवा में हो, कैसे इस काम से जुड़ गईं? इस सवाल का जबाव मेरे पास नहीं हैं। कब से, और कैसे, मैं नहीं जानती। जब से होश संभाला मैंने अपने परिवार को लुटते देखा है। दस साल की उम्र से अपने माता-पिता की ग़रीबी व मजबूरी महसूस की है। मेरे अनपढ़ पिताजी से कोरे कागज़ पर अंगूठा लगवाकर, पिताजी को मिली ज़मीन को, गुमला ज़िले के अधिकारी ने अपने साले के नाम कर दिया। मेरा परिवार ज़मीन वापस पाने के लिए कई सालों तक कोर्ट के चक्कर लगाता रहा। पर पैसे वाले परिवारों ने गांव वालों को धमकी देकर चुप करा दिया। मेरे पिता की तरफ से कोई भी गवाही देने कचहरी नहीं आया।

सभा को सम्बोधित करती दयामणि बारला

मेरे माता-पिता जो दस एकड़ ज़मीन के मालिक थे अब भूमिहीन हो गये थे। जो पहले साल भर खुद भी खाते थे और दूसरों को भी खिलाते थे— अब दूसरों की नौकरी कर रहे थे। हमारा परवार बिखर गया। पिताजी दूसरे गांव में मज़दूरी करने लगे, बड़ा भाई अपने ही गांव में दूसरों के घर नौकर बन गया। मां रांची में दाई और मंझला भाई कुली का काम करने लगे। खाली घर में मैं और एक छोटा भाई रह गये। गाय-बैल-भैंस, बकरी सभी केस लड़ते-लड़ते बिक चुके थे।

तेरह साल की उम्र में मैंने से दूसरों के खेत में मज़दूरी करके ज़िंदगी को नयी यात्रा शुरू की। महुआ, लाह, करंज, आम, कटहल, इमली, डुमर, पाकर, बेर, साग-पात तोड़ कर चुन-बीन कर खाना जीवन का एक हिस्सा बन गया। लेकिन जाने-अनजाने उंगलियों ने जो कलम-कागज़ थाम लिये थे, वे हमेशा साथ रहे। चिलचिलाती धूप, मूसलाधर पानी, गरजती बिजली, कड़कती ठंड ने हमेशा लड़ने और जीने का हौसला बुलंद किया।

पता ही नहीं चला कि कब मिडिल स्कूल पास किया। अब रांची जाकर पढ़ना चाहती थी। हाथ में आठवीं पास सर्टिफिकेट लिये अकेले रांची आ गयी। सभी कुछ नया था। मां-भाई कहां थे पता नहीं था। एक गौशाला में रहने का इंतज़ाम किया और संत मार्ग्रेट हाई स्कूल रांची की नौवीं कक्षा में दाखिला लिया। गांव के स्कूल और रांची के विद्यालय में ज़मीन आसमान का अंतर था। अपने सहपाठियों और शिक्षकों का भरपूर प्यार और सहयोग

मिला। मैंने खर्चा चलाने के लिए घरों में चौका-बर्तन शुरू कर दिया।

मन में एक ही ख्वाब था- परीक्षा पास करनी है। कॉलेज जाना है। यह अवसर भी मिला। कई संस्थानों में पार्ट टाईम काम करके, बच्चों को ट्यूशन पढ़ाकर मैंने एमकॉम पास कर लिया। दो साल एक गैर सरकारी संस्था में नौकरी की। वहां भी वही छलावा, झूठ-फरेब देखा। विद्रोह किया और नौकरी छोड़ दी। मेरे सामने अब दो रास्ते थे। अपनी ज़िंदगी के लिए नौकरी के रास्ते को चुनना या आदिवासी किसानों, दलितों और ज़रूरतमंदों के साथ जीना।

मुझे दूसरा रास्ता अच्छा लगा— जहां से आज मैं आपके बीच हूं।

1995 में वर्तमान खूंटी ज़िले और गुमला ज़िले के बीच बह रही कोईल और कारो नदी को बांध कर 710 मेगावाट की बिजली बनाने की सरकार ने घोषणा की। इस बांध से 256 गांव डूब जाते। ढाई लाख की आबादी अपने घरों से उजड़ जाती। कुल 55 हज़ार एकड़ ज़मीन जलमग्न हो जाती और 27 हज़ार एकड़ जंगल भी डूब जाता। हमने विरोध किया। हमारा एक ही नारा था- जान देंगे लेकिन ज़मीन नहीं देंगे। सन 2000 में आठ साथियों की शहादत के बाद आंदोलन विजयी रहा।

1996 में वरिष्ठ पत्रकार, फैसल अनुराग और वासवी किडो के मार्ग दर्शन में आदिवासी युवक-युवतियों ने मिलकर एक पत्रिका "जनहक" निकलाना शुरू किया। गांव-गांव की बातों को लेखन के माध्यम से राजतंत्र और ज़िम्मेदार व्यक्तियों के सामने लाने का प्रयास किया गया। आदिवासियों के इतिहास, भाषा-संस्कृति और वर्तमान चुनौतियों पर लेखन को आगे बढ़ाने का अवसर प्रभात खबर ने दिया। 2000 में वरिष्ठ पत्रकार श्री पी साईनाथ जी की ओर से ग्रामीण पत्रकारिता के लिए हमारे समूह को दस हज़ार रुपये, एक कैमरा, एक टेपरेकॉडर ईनाम में मिला।

हड़ताल पर बैठे साथियों के साथ दयामणि बारला

राज्य के आदिवासियों के अधिकारों पर संघर्ष करते हुए पहली बार सन 2000 में बंगलादेश के आदिवासियों के बीच जाने का मौका मिला। वहां कई देशों के आंदोलन के प्रतिनिधि आये हुए थे। यहां विश्व के हर कोने में रहे आंदोलनों को समझने का मौका मिला। साथ ही अंग्रेज़ों के समय झारखंड से कुली का काम करने के लिए ले जाए गये आदिवासियों से मिलकर उनकी पीड़ा को भी जाना। इसी के फौरन बाद मैं अफ्रीका के एक सम्मेलन में गई। उसी समय डरबन में नस्लवाद पर सम्मेलन हो रहा था। उस सम्मेलन में विश्व के आदिवासियों से जुड़े मुद्दों को समझा। 25 दिनों के अफ्रीका प्रवास के दौरान ही पानी व बिजली के निजीकरण से जनता पर होने वाले प्रभावों पर समझ बनाने का अवसर भी मिला। इन गतिविधियों के अलावा मैं *कोयलकारो जल विद्युत परियोजना* में महिलाओं के नेतृत्व को बढ़ाने के लिए सतत रूप से काम कर रही हूं।

आज देश की सरकार पूरी तरह से देश-विदेश के पूंजीपतियों के समर्थन में उतर आयी है। किसानों से ज़मीन छीनकर पूंजीपतियों को मुनाफ़ा कमाने के लिए सौंप रही है। केन्द्र सरकार अपने अधिकारों के लिए संघर्षरत आदिवासियों व किसानों को गोलियों से भून रही है। झारखंड को अलग राज्य बने करीब दस साल हो गये। राज्य सरकार ने इस समय में लगभग 104 विदेशी कम्पनियों के साथ अनुबंध किये हैं। कई दर्जनों गांव और आदिवासी इलाकों को विस्थापित करके स्टील प्लांट, बिजली उत्पादन परियोजनाएं आदि लगाने का विचार है। हम लोग इस विनाशकारी विकास के विरुद्ध जन आंदोलन से जुड़े हैं। अब देखना है कि जनता की जीत कब होगी। तब तक हमारा संघर्ष जारी रहेगा।